भाषा का शिक्षण शास्त्र : पढ़ना और पढ़कर समझना

प्रो. जलालुद्दीन से विश्वंभर की बातचीत

प्रो. जलालुद्दीन उन बिरले शिक्षाविदों में से हैं जो सीधे और सतत रूप से बच्चों के साथ शिक्षण प्रक्रियाओं से जुड़े हुए हैं। यह बातचीत मूलतः भाषा शिक्षण की प्रक्रिया में शिक्षक के सामने आने वाली समस्याओं पर केन्द्रित है।

हमारी स्कूली व्यवस्था की बड़ी असफलता यह मानी जाती है कि कक्षा 5 तक भी बच्चे पढ़ने और पढ़कर समझने का कौशल अर्जित नहीं कर पाते, आलोचनात्मक पठन और चिन्तन की क्षमता तो दूर की बात है। इस बातचीत में इस समस्या के कारणों पर चर्चा करते हुए यह समझने की कोशिश की है कि बच्चों में पढ़कर अर्थ समझने के साथ ही आलोचनात्मक पठन और चिन्तन की क्षमताओं का विकास किस प्रकार किया जा सकता है।

लेखक परिचय :

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद में लगभग 14 वर्षों तक प्रोफेसर के पद पर कार्य करते हुए कार्यवाहक निदेशक के पद से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति, शिक्षा के जाने-माने अध्येता, विभिन्न संगठनों में शिक्षा सलाहकार, शिक्षा के सिद्धान्त और व्यवहार को कक्षा प्रक्रियाओं से जोड़ने के लिए इलाहाबाद, कलकत्ता, अलीगढ़, दिल्ली आदि में स्वयंसेवी संगठनों के साथ सतत कार्य, लगभग 100 राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शोधपत्र प्रकाशित।

सम्पर्क :

सी - 33, गंगोत्री एन्कलेव,
अलकनन्दा, नई दिल्ली-110019

प्रश्न : पाउलो फ्रेरे मानते हैं कि लिखित भाषा के बुनियादी पहलुओं में शिक्षार्थी का प्रवेश उसे अपने सामाजिक और राजनैतिक जीवन के बारे में आलोचनात्मक चिन्तन प्रक्रिया से जोड़ सकता है। साथ ही वे मानते हैं कि शिक्षार्थी के लिए पढ़ना और लिखना, स्वयं अपने और समाज के बारे में निर्मित पूर्व धारणाओं को आलोचनात्मक नजरिए से देखने का जरिया बनता है और अन्ततः उत्पीड़न से मुक्तिदायी हो सकता है। यानी पढ़ने-लिखने में अगर आलोचनात्मक चिन्तन और आलोचनात्मक पठन को शामिल किया जाए तो वह उसे उत्पीड़न से बचाएगा और आलोचनात्मक चिन्तन का विकास करेगा।

यह कथन पढ़ने और लिखने के बारे में खास नजरिया प्रस्तुत करता है। हालांकि उन्होंने यह साक्षरता शिक्षा के बारे में कहा है। लेकिन यह हमारा ध्यान उन प्रक्रियाओं पर दिलाता है जहां पढ़ना-लिखना यांत्रिक कर्म नहीं रहता बल्कि इसके माध्यम से आलोचनात्मक नजरिए का विकास होना चाहिए। यदि इस कथन को वर्तमान शिक्षा के संदर्भ में देखें तो हमारी स्कूली शिक्षा की यह समस्या है कि भाषा को जिस यांत्रिक तरीके से पढ़ाया जाता है वहां पढ़ने का समझने से दूर-दूर तक वास्ता नजर नहीं आता। बच्चे जो पढ़ रहे हैं वे उसका अर्थ नहीं समझ रहे होते हैं। आप इसके कारणों को किस प्रकार समझते हैं ?

उत्तर : आप अर्थ शब्द का प्रयोग वैसे कर रहे हैं जैसे शिक्षित और वयस्क व्यक्ति करते हैं। जबकि अर्थ का अर्थ बच्चे और वयस्क के लिए अलग-अलग होता है। जिन लोगों को वर्ण, शब्द और वाक्य पढ़ना या लिखना नहीं आता है और जिनके पास शब्द या वर्ण के प्रतीक या चिन्ह हैं, इन दोनों के लिए यह एक अलग-अलग दुनिया होती है क्योंकि ये शब्द या प्रतीक वास्तविक जीवन या वस्तुओं को प्रतिबिंबित नहीं करते। ये केवल प्रतीक हैं। इसलिए वर्ण या शब्द को भी वे तस्वीर या चित्र मानकर चलते हैं और क्योंकि इस चित्र की आवाज होती है और आवाज के साथ इस चित्र

को जोड़ने की कोशिश करते हैं। यदि इस दृष्टि से देखें तो बच्चों और बड़ों के लिए अर्थ शब्द का अर्थ अलग निकलता है। जब हम सुन रहे हैं या बात कर रहे हैं, इसको जब लिखित रूप में देखते हैं तो वह अलग चीज होती है। इसका सुनने वाली चीज के साथ कोई संबंध नहीं है। जो सुन रहे हैं वैसी चीजें इस दुनिया में दिखाई नहीं देती। हम जो सुनते हैं वह सुनना अलग होता है और लिखना अलग होता है। इसे हम एक सह-संबंध के माध्यम से जोड़ते हैं। इस प्रक्रिया में इस प्रतीक से कुछ संकेत ले लेते हैं। जैसे जब हम केला कहते हैं तो केला ध्वनि का केला वस्तु से संबंध जोड़ते हैं और केला लिखित शब्द के साथ भी संबंध जोड़ते हैं। यह एक त्रि-पक्षीय संबंध होता है। जब दोबारा लिखित केला शब्द देखते हैं तब लगता है कि इसको कहीं न कहीं देखा है। इस प्रक्रिया में केला ध्वनि और केला वस्तु के संबंध को व्यक्ति जोड़ लेता है। इसी तरह जब केला वस्तु को देखते हैं तो केला की आवाज याद आती है। क्योंकि उसने केला का नाम जीवन में सीखा है, अनुभव से सीखा है। उसने केला का नाम लिखित रूप से नहीं सीखा है।

जब हम शब्द का उच्चारण करते हैं तो इससे एक समझ बनती है। मौखिक परंपरा से भी अर्थ की एक समझ बनती है। उस समझ का ही प्रतीक में प्रयोग करते हैं। अर्थ की समझ की दुनिया बच्चों और वयस्कों में बहुत विकसित और अलग-अलग होती है। इसलिए सिर्फ लिखित शब्द के साथ ही अर्थ की समझ को देखना सही नहीं है। अर्थ की समझ सिर्फ लिखित सामग्री से आती है यह एकदम सही नहीं है। भाषा के लिखित स्वरूप से बहुत पहले ही सुनने से अर्थ की समझ प्रारम्भ हो जाती है। यहां अर्थ समझने का मतलब हो गया कि किसी के साथ किसी को जोड़ना-शब्द के साथ, चित्र के साथ, वास्तविक अनुभव के साथ जोड़ने के तरीके को अर्थ निकालने का तरीका कहते हैं। जब इस संबंध को जोड़ना आ जाता है तब कहते हैं कि अर्थ को समझना आ गया है। यह प्रक्रिया बचपन से ही विकसित होती है। अतः यह कहना बिल्कुल गलत होगा कि पढ़ने के साथ अर्थ समझना नहीं होता। क्योंकि अर्थ समझने की क्षमता तो उसमें बचपन से ही होती है। बच्चों में अर्थ निकालने की क्षमता तो जब वे बात भी नहीं करते तब से ही आरम्भ हो जाती है। जब बच्चा मां के गर्भ में होता है तब से ही अर्थ समझना शुरू कर देता है। क्योंकि बच्चे की सभी ज्ञानेन्द्रियां बन चुकी होती हैं और उसमें लगातार संकेत जाते हैं और इसमें से अर्थ निकालने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। इसलिए मानव में अर्थ निकालने की प्रक्रिया, प्रारंभिक प्रक्रिया, जैविक है। यह जैविक प्रक्रिया शुरूआत में स्वतः स्फूर्त होती है और इसको व्यक्ति परिचालित नहीं करते। यह अपनी तरह से ही परिचालित होती है। मानव मस्तिष्क में इतने संकेत जाते हैं कि बच्चा संकेतों की पुनरावृत्ति को पहचान लेता है और उसमें से पैटर्न निकाल लेता है। जब वही चीज दोबारा उसके सामने आती है तो दीर्घ कालिक स्मृति (लोंग टर्म मेमोरी) से उसकी पहचान उभर आती है। और इसके साथ उसका नवीनीकरण होता है। यह प्रक्रिया बहुत ही समृद्ध ढंग से बच्चे में चलती है। जब कोई व्यक्ति या बच्चे आपस में बातचीत करते हैं, कोई चीज देखते हैं, कोई अनुभव करते हैं तो अर्थ निकालने की एक बड़ी प्रक्रिया चलती है जो स्वतः स्फूर्त होती है।

अर्थ निकालने की प्रक्रिया उसे दूसरे रूप में सचेतन ढंग से करनी पड़ती है। दोनों को जोड़ने से यह प्रक्रिया स्थाई हो सकती है। सचेतन का मतलब-जब बच्चा स्वयं देखता है कि 'अरे ! यह कैसे हो रहा है ?' वह इसे खुद करके देखता है। बच्चों को आप देखेंगे कि वे अपने अनुभव की पुनरावृत्ति करना चाहते हैं। पुनरावृत्ति में वे कार्य-कारण संबंध को देखना चाहते हैं। कार्य-कारण संबंध को देखना ही अनुसंधान की एक प्रक्रिया है, सत्य निकालने की प्रक्रिया है और इसके माध्यम से वे अपने लिए साधारण सत्य निकालते हैं। यह संभव है कि हर बच्चे का साधारण सत्य सार्वजनिक सत्य न हो। इसी प्रक्रिया के दौरान जब बच्चे सामाजिक प्रक्रिया में चले जाते हैं तब उनका साधारण सत्य सामाजिक सत्य का रूप ले लेता है। इसलिए अर्थ ग्रहण करने का तरीका सामान्य रूप से जैविक होता है और अवधारणात्मक रूप में चलता है। जब मन इस प्रक्रिया में हिस्सा लेता है तो अवधारणा बनना आरम्भ होता है। पहले मन इस प्रक्रिया में हिस्सा नहीं लेता है। फिर मन अपने ढंग से हिस्सा लेता है और तीसरे स्तर पर मन को हिस्सा लेने के लिए हम परिचालित करते हैं। चौथे स्तर पर हम देखते हैं कि यह हमारे अपने अकेले मन का ही मामला नहीं है बल्कि यह सामाजिक मन के साथ परिचालित होता है। इस तरह यह एक-एक चरण आगे चलता है। इसलिए अर्थ निकालने की प्रक्रिया को सिर्फ पढ़ने की प्रक्रिया से जोड़ने का तरीका एकदम सही नहीं है। सीखने-सिखाने की जो प्रक्रिया है उसमें से अर्थ निकलता है।

पाउलो फ्रेरे ने इंसानी शोषण को जो महत्त्व दिया था, गरीबों की शिक्षा के बारे में उनका जो मत था, वह एक विशेष प्रयोग था। इस विशेष प्रयोग पर पिछले 50 साल से काम करते-करते पाउलो फ्रेरियन पद्वति से शोध करते हुए लोग इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं, खुद पाउलो फ्रेरे भी इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि, लिखित जगत का जो तरीका है, वह एक अलग तरीका होता है। जिस मौखिक भाषा का हम स्वतः स्फूर्त तरीके से इस्तेमाल करते हैं उसमें सुनने और अर्थ समझने का विकास स्वतः स्फूर्त तरीके से होता है, बुद्धि का विकास जिस ढंग से होता है, बोध का विकास जिस ढंग से होता है; उसी ढंग से पढ़ने और लिखने की साक्षरता के कौशल का विकास नहीं होता। यह स्वतः स्फूर्त तरह से होने वाली चीज नहीं है। यह मानव निर्मित है। जो पहले था उसका विकास परिवेश से हुआ था।

आरंभिक अवस्था में भाषा सामाजिक पर्यावरण से सृजित हुई थी, प्राकृतिक रूप से भाषा का विकास हुआ था। प्राकृतिक रूप से ही परस्पर संप्रेषण हुआ था और प्राकृतिक रूप से ही अर्थ ग्रहण करना विकसित हुआ था। यह सब सामाजिक संपर्क के माध्यम से हुआ था। लेकिन लिखित भाषा तो मानव निर्मित परिस्थिति होती है। तब उन्होंने सवाल उठाया और अभी सब लोग उठाते हैं कि यदि साक्षरता के कौशल के विकास को, उसके आधार को अर्थ से अलग कर देंगे तो यह यांत्रिक प्रक्रिया रह जाएगी, यह एकदम सही है। इसे एक उदाहरण से समझ सकते हैं कि एक इंजीनियर किसी भी इमारत का नक्शा बनाता है तो यह नक्शा-नवीसी का कौशल हो सकता है। लेकिन हो सकता है कि उसे उसकी वास्तुकला और उसके पीछे के दर्शन के बारे में नहीं पता हो। इसी तरह हम देखते हैं कि निर्माण कार्य से जुड़े मजदूर या कारीगर को भी वास्तु या दर्शन या इकॉलोजी के बारे में उतना ज्ञान नहीं होता। वास्तव में यही स्थिति है। इसलिए हमें निर्माण की प्रक्रिया के व्यावहारिक पहलुओं के साथ इसके दर्शन, पर्यावरण के साथ संबंध एवं अन्य पहलुओं से परिचित होने और भवन को ठीक तरह से उपयोगी बनाने का काम भी आहिस्ते-आहिस्ते साथ करने की कोशिश करनी है।

निर्माण की प्रक्रिया के साथ दर्शन को जोड़ते रहना, उत्पीड़न के कारणों का विश्लेषण करते रहना, और इन दोनों को जोड़ना, साधारण शिक्षक या व्यक्ति के लिए संभव नहीं है। यह बहुत लम्बी-चौड़ी बात हो जाती है कि हम आपको दो शब्द सिखाएंगे और उसके साथ ही जीवन के संघर्ष के बारे में भी चर्चा करते हुए 'क' कैसे लिखना है यह भी सिखाएंगे।

मैंने अपने 50 साल के जीवन में शिक्षा के लिए काम करते हुए, पढ़ाते हुए, पढ़ते हुए, सीखते हुए, सिखाते हुए देखा है कि इन तीन-चार चीजों को एक साथ जोड़ना आसान नहीं है। कोई अनुभवी शिक्षक या शोधकर्ता यह कोशिश कर सकता है और शायद कामयाब भी हो सकता है। लेकिन जब हम आम जनता की साक्षरता या शिक्षा की बात करते हैं तो आपको करोड़ों लोगों को ध्यान में रखते हुए बात करनी होती है। तब यह सवाल उठता है कि साधारण शिक्षाकर्मी किस ढंग से काम करे कि सीखने वाले और सिखाने वाले के लिए भी यह प्रक्रिया आसान हो जाए। इसीलिए कौशल के पहलू को अलग से कुछ समय देना चाहिए। अर्थ के पहलू को चित्र द्वारा जोड़ने या जीवन से जोड़ने के लिए कुछ गतिविधि भी करनी चाहिए। इन तीन-चार चीजों को समान ढंग से कर सकते हैं लेकिन एक साथ करना संभव नहीं है। जब कोई प्राइमर बनाया जाता है तो यह प्रेरणा अपनी जगह पर रह जाती है और कक्षा में जो काम होते हैं वे कुछ अलग ही हो जाते हैं। साक्षरता शिक्षा के लिए यह समग्रतावादी पद्धति (होलिस्टिक मेथड) की असफलता है।

हिन्दुस्तान में 40 साल तक साक्षरता कार्यक्रम चलने के बाद जब केन्द्रीय सरकार ने साक्षरता के लिए विविध प्रकार की सामग्री के उपयोग पर एक कमेटी बनाई तब मैंने सरकार के सामने यह प्रस्ताव रखा कि सिर्फ शब्द क्रमिक या वाक्यानुक्रमिक ढंग से साक्षरता का कार्य अधूरा रह जाएगा। इसके लिए वर्णानुक्रम और शब्दानुक्रम ढंग को साथ लेकर चलना पड़ेगा और व्यावहारिक दैनिक जीवन में जो प्राकृतिक भाषा है उसके साथ जोड़ना पड़ेगा। इसलिए शिक्षक के लिए यह जरूरी है कि वह एक दिन में थोड़ी चर्चा वाक्य पर करे, उसके अर्थ पर चर्चा करे और उसे अनुभव के साथ जोड़े। साथ ही शब्द और वर्ण पर चर्चा करे। स्वर-ध्वनि का विश्लेषण भी करे। नए-नए शब्द बनाएं, जल्दी से जल्दी हर वर्ण और हर स्वर-व्यजंन को पहचानने, इनको जोड़ने से कैसे शब्द बनते हैं और शब्द से कैसे वाक्य बनते हैं, यह भी सिखाना चाहिए। इनमें आपस में कोई विरोध नहीं है। लेकिन जब एक ही खास तरीके से, एक ही पद्धति से सिखाने की बात करते हैं तो लोगों के लिए सीखना-सिखाना मुश्किल हो जाता है। संतुलित ढंग से सिखाने के लिए इसे लचीला बनाने की जरूरत है। इसलिए रोजाना शिक्षक 10-15 मिनिट उन वर्णों, जिन स्वर-व्यंजनो से शब्द बना है, उसके लिखने के ढंग पर काम करे और पूरी वर्णमाला को याद करते हुए यह देखें कि अलग-अलग ढंग की आवाज में किस तरह का फर्क हो जाता है। उच्चारण करने की जैविक प्रक्रिया आदि पर काम करे। इस प्रक्रिया से सीखने पर याद रखना आसान हो जाता है। जिन चीजों को आसानी से याद कर सकते हैं, बार-बार प्रयोग कर सकते हैं और अलग-अलग संदर्भ में प्रयोग कर सकते हैं, वह सीखना स्थाई होता है। इसलिए साक्षरता के लिए पाउलो फ्रेरियन पद्धति को संतुलित साक्षरता पद्धति के साथ जोड़ने की आवश्यकता है। इसको हम ध्वनि विश्लेषण या ध्वनि के प्रति जागरूकता कहते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि साक्षरता के समय जीवन के बारे में, शब्दों को भावनात्मक रूप में हम कैसे महसूस करते हैं, जीवन में इसका असर क्या है; इस पर चर्चा बंद कर दें। इसका मतलब है कि हम दो-तीन पद्धतियों को एक साथ मिलाकर काम कर सकते हैं। यह रेखीय तरीके से चलने वाला मामला नहीं है। यह समग्रता में चलने वाला है। एकाधिक तरीके आपस में मिलजुल कर काम कर सकते हैं। इसलिए इसको हम समानान्तर पद्धति या समग्रतावादी पद्धति कहते हैं। भाषा शिक्षण में इसे समावेशी पद्धति कहते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसे संतुलित साक्षरता पद्धति कहते हैं जिसे बहुत साल की बहस के बाद उपयुक्त पाया गया है। अभी भी थोड़ी-सी बहस इस पद्धति को लेकर है लेकिन विकसित देश इसे अपना रहे हैं और बहुत से विकासशील देशों में इस पर चर्चा हो रही है। भारत में भी चर्चा हो रही है।

प्रश्न : आप कह रहे हैं कि मिश्रित पद्धति को काम में लेना चाहिए बजाए किसी एक ही पद्धति को काम में लेने के। लेकिन साक्षरता को लेकर अभी हमारे देश में आम मान्यता यह है और इसे लगभग सभी राज्यों की पाठ्यपुस्तकों में जगह भी मिली है कि शब्द से वर्ण सिखाया जाए। इससे पहले वर्ण पद्धति प्रमुख थी। अभी शब्द से वर्ण की तरफ आने की पद्धति की पैरवी की जा रही है लेकिन अध्ययन यह बताते हैं कि अभी भी स्कूलों में शिक्षक वर्ण से ही पढ़ा रहे हैं। इसके क्या कारण हैं ? क्या इसके सांस्कृतिक कारण हैं या शिक्षकों के क्षमता संबंधी कारण हैं या शिक्षण प्रशिक्षण संबंधी कारण हैं ?

उत्तर : मैं तो कहूंगा कि आप हिन्दी का इतिहास देख लीजिए। मैं तो बंगाल से हूं। पिछले 200 साल से जब से आधुनिक स्कूल प्रणाली आरम्भ हुई तब से वर्ण माला पद्धति का सारी दुनिया में प्रयोग होता रहा है। हम हिन्दुस्तानी संस्कृत भाषा आधारित शास्त्रीय उच्चारण का प्रयोग करते हैं। हमारे यहां स्वर और व्यंजन का विन्यास वैज्ञानिक रूप से किया गया है। इनका विन्यास उच्चारण के ढंग से किया गया है जिसको हम वर्ग कहते हैं। इन वर्गों के उच्चारण में ही कवितात्मकता है। उच्चारण में कवितात्मकता होने के कारण इन्हें याद करना आसान है। जबकि वर्णों की बनावट अलग-अलग ढंग की होती है। वर्णों की बनावट तो बदलती रही है, ध्वनि के लिए जिस प्रतीक का चयन किया गया है वह स्थिर नहीं है, वह बदल जाता है। वर्णों को लिखने की शैली में परिवर्तन हो रहे हैं। लेकिन संस्कृत आधारित उच्चारण दुनिया में ऐसा आधार है जिसमें सभी स्वर व्यंजनों का वैज्ञानिक ढंग से विन्यास किया गया है और इस विन्यास को सिखाना आसान होता है क्योंकि यह इसमें गीतात्मकता है। इस पद्धति को छोड़ने का कोई कारण नहीं है।

बच्चों के साथ काम करते हुए 10-15 मिनिट वर्णों का अभ्यास भी चलना चाहिए। जैसे, हम कहानी सुनाते हैं। कहानी पर बात करते हुए हम दूसरे काम पर चले जाते हैं। कहानी हम इसलिए सुनाते हैं कि बच्चे इसमें भावनात्मक रूप से रम जाते हैं। हर कहानी में चरित्र होते हैं। उसकी एक बुनावट होती है। उसमें घटनाक्रम होता है। उसकी कोई परिणति होती है। किसी चीज की बुनावट को पकड़ना, ज्ञान को किसी ढांचे में पिरोना; याद रखने का तरीका होता है। इसलिए भाषा सीखने में नए-नए शब्द सीखना महत्त्वपूर्ण है। एक के साथ दूसरे को जोड़ना, नई चीज के साथ पुरानी चीज को जोड़ना बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है। क्योंकि यह समझ बनने के लिए और याद रखने के लिए जरूरी है। एक अन्य चीज यह है कि जिन सभी चीजों को हमने याद रखा है उनको अभिव्यक्त कैसे करना है। जब हम बच्चों के साथ बात करने के लिए किसी विषय या विचार को लेते हैं तो यह सब हम शब्द के माध्यम से, भाषा के माध्यम से करते हैं। यह भाषा सिर्फ लिखित भाषा नहीं है क्योंकि लिखित से हम मौखिक चर्चा में चले जाते हैं और उस चर्चा को हम अनुभव से जोड़ते हैं। जिस चीज को हम समझ कहते हैं उस समझ को लम्बे समय तक याद करने के लिए हम कोई तरीका अपनाते हैं। इसका पुराना ढंग है कविता, गीत या सूत्र के द्वारा चीजों को याद रखना। इसीलिए हमारा सारा मिथक शास्त्र या शास्त्रीय रचनाएं कवित्वपूर्ण हैं। मौखिक परंपरा में भी यह इसी तरह से आता है।

समझ बनने के तरीके में हम बहुत अलग-अलग तरह से काम करते हैं। लेकिन जब अभिव्यक्त करने की बात होती है तो लोग यह आशा करते हैं कि एकदम विशुद्ध ढंग से अभिव्यक्त करें। जबकि समझ की प्रक्रिया में हम नए शब्दों के साथ पुराने शब्दों, देहाती शब्दों और नए ढंग के शहरी शब्दों का इस्तेमाल करते हैं। वैज्ञानिक तरीकों के साथ परंपरागत तरीकों को भी जोड़ते हैं। याद रखने के लिए जो तरीके अपनाए जाते हैं उनको अभिव्यक्त करने के लिए अपनाना चाहिए। इसलिए लिखित सामग्री से अर्थ समझने के लिए यह आवश्यक है कि याद रखने और अर्थ समझने के लिए सिर्फ लिखित सामग्री ही महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि परंपरागत मौखिक तरीकों के अनुभवों को भी इसके साथ मिलाया जाना चाहिए। बावजूद इसके हम उस तरह से नहीं लिख सकते जैसे बोलते हैं। हम जिस ढंग से बात कर रहे हैं उस ढंग से लिख नहीं सकते। क्योंकि बोलचाल की भाषा में लिखने से तो बात बहुत लंबी-चौड़ी हो जाएगी और निष्कर्ष निकालने में पाठक को बहुत मुश्किल होगी। इसके लिए हमें विचार प्रक्रिया को व्यवस्थित करना पड़ता है। विचार प्रक्रिया को व्यवस्थित करके जिस भाषा में उसे अभिव्यक्त करने के लिए हम मजबूर हैं, अर्थ समझने के लिए उस भाषा में मजबूर नहीं हैं। अभिव्यक्ति के लिए हम जिस भाषा को इस्तेमाल करते हैं अर्थ समझने में हम उस भाषा का इस्तेमाल नहीं करते। अर्थ को समझना तो हम बहुत ही आरंभिक अवस्था से स्वतः स्फूर्त तरीके से शुरू कर देते हैं। लेकिन हमें अभिव्यक्त तो भाषा के उच्च स्तर पर करना पड़ता है। इसलिए भाषा सीखने के इस उच्च स्तर पर वाक्य बनाना, व्याकरण, नियमों की समझ आदि से स्वतंत्रता सीमित हो जाती है। भाषा के अभिव्यक्ति वाले पक्ष में ये सभी चीजें समाहित हैं। इसलिए सीखने में नई चीजों के बारे में जानना, शब्दों को जानना शब्दकोष का बनना है। अर्थ समझने के लिए वाक्यांश और वाक्य को समझना होता है। अर्थ में जाने के लिए कथ्य पर जाना पड़ता है। अर्थ समझने के लिए मूल कहानी या मुख्य विचार को समझना पड़ता है। इस तरह से हम छोटी-छोटी चीजों से बड़ी-बड़ी चीजों पर आते हैं और जितना बड़ी चीजों पर आ रहे हैं उतना ही अमूर्तीकरण बढ़ रहा है, मूर्त से बाहर निकलते जा रहे हैं। जब चीजों को पूरा याद रखते हैं तो हमें एक अनुभव हो जाता है, वह भी एक

अमूर्तीकरण होता है और उस अमूर्तीकरण से फिर मूर्त में आना होता है। इसलिए इस प्रक्रिया में भाषा को सुनकर ग्रहण करने का हिस्सा अभिव्यक्त करने वाले हिस्से से बहुत भिन्न होता है।

भाषा में अभिव्यक्ति वाला हिस्सा बहुत मांग करता है, यह गुणवत्ता की ओर उन्मुख होता है और यह लिखने की शैली पर निर्भर करता है। जबकि भाषा को सुनकर ग्रहण करने वाला हिस्सा मिश्रित होता है। इसलिए बच्चों की साक्षरता के लिए एक निर्णय करना होता है कि ये बच्चे मात्र साक्षर होकर रह जाएंगे या आगे बढ़ेंगे। आगे बढ़ेंगे इसका मतलब हो गया कि वे ज्ञान निर्माण करेंगे और दूसरों ने जो ज्ञान निर्माण किया है उसमें हिस्सेदार बनेंगे। वे खुद कुछ निर्णय लेंगे, उनको अपने जीवन में प्रयोग करेंगे। हम ऐसे व्यक्ति का विकास चाहते हैं जो स्वनिर्भर हो, सोचने वाला हो और अपने काम स्वयं करने वाला हो। यदि हम यह सोचते हैं तो हमें भाषा के उच्च स्तर पर जाना ही पड़ेगा। इसलिए भाषा शिक्षा को प्राथमिक स्तर पर हम नहीं रोक सकते। इसीलिए प्राथमिक स्तर पर भाषा के विकास के संदर्भ में यह कोशिश करनी पड़ती है कि मानक भाषा की शब्दावली, आलोचनात्मक भाषा की शब्दावली और तरीके बच्चे में विकसित हों। इसको हम बहु-आयामी साक्षरता कहते हैं।

बहु-आयामी साक्षरता में सिर्फ भाषा की साक्षरता नहीं होती बल्कि समाज विज्ञान की साक्षरता, विज्ञान की साक्षरता, गणित की साक्षरता, कारीगरी की तकनीक की साक्षरता, राजनीति की साक्षरता आदि शामिल हैं। इसको हम अनुशासन नहीं मानते। जब बच्चे यूनीवर्सिटी जाएंगे तब यह अनुशासन बनेगा। यहां साक्षरता का मतलब सिर्फ पढ़ना-लिखना आना ही नहीं है, समझ में आना और उस विषय में समझ में आना जिस विषय पर अलग से काम हो रहा है और जो उस विषय का अलग से ढांचा है। इसलिए अर्थ समझने का मतलब अन्य तरीकों की साक्षरता भी है।

पहले यह सोचा जाता था कि सिर्फ भाषा की साक्षरता से ही सभी विषयों की समझ बनेगी। लेकिन यह अब नहीं दिखाई देता। हर विषय की अलग-अलग साक्षरता करनी होगी। जैसे, विज्ञान सीखने में अवधारणा निर्माण हम कहानी से नहीं कर सकते क्योंकि वहां हमें सवाल बहुत उठाने पड़ते हैं और हमें कुछ करके दिखाना पड़ता है। इसलिए अनुसंधान की साक्षरता हमें अलग से करनी होती है। विश्लेषण की साक्षरता भी अलग से करनी पड़ती है। संश्लेषण की साक्षरता अलग से करनी होती है जिसमें अलग-अलग उदाहरणों को देखकर, सबके संबंधों को देखकर एक साथ इकट्ठा करना होता है। ज्ञान निर्माण की बात भाषा के साथ कही जाती है इसलिए कह सकते हैं कि भाषा का विकास भी लगातार चलता रहता है। भाषा की साक्षरता कभी खत्म नहीं होती। साक्षरता का स्तर अलग- अलग हो सकता है और होना भी चाहिए। साक्षरता के प्रकार भी अलग-अलग होते हैं। इसलिए हम कहते हैं कि अलग-अलग स्तर पर यह साक्षरता अलग-अलग होती है। यदि हम इस बहु-आयामी साक्षरता पर जोर देंगे तब ही हम जीवनपर्यन्त सीखने वालों की बुनियाद डाल पाएंगे।

प्रश्न : क्या आप कहना चाह रहे हैं कि भाषा में वर्ण से शब्द की तरफ जाना बच्चे के लिए सहूलियत भरा होता है ? क्या इसी वजह से वर्ण पद्धति का प्रयोग हमारे शिक्षक कर रहे हैं या कि उनका वर्ण पद्धति में अनुकूलन हो गया है या अन्य पद्धतियों को वे अपनाना नहीं चाहते ?

उत्तर : अभी तो यह अनुकूलन के तहत ही चल रहा है। लेकिन दूसरे तरह के अनुकूलन की जो कोशिश की गई, शब्द से सिखाने की, वह पद्धति भी असफल हो गई है। हर रोज नए शब्द कहेंगे तो बच्चे नया वर्ण सीखेंगे। वर्ण को स्थगित करके हम नए-नए शब्द कहना चाहते हैं तो जो बच्चे घर में वर्ण सीखकर आते हैं वे आगे निकल जाते हैं। प्राथमिक स्तर में कक्षा 1 में आने से पहले मध्यम वर्ग के हर परिवार में 2-3 साल की उम्र से बच्चा वर्ण चित्र या गीत द्वारा सीख लेता है और जब वह 5-6 साल में कक्षा 1 में आता है तो शब्द के साथ वर्ण भी जानता है। इसलिए यह सभी बच्चों को असमान अवसर देना होगा। जिस परिवार में साक्षर बच्चे नहीं हैं और जिसमें पढ़ने-लिखने की की संस्कृति नहीं है उसको आप पीछे धकेल रहे हैं। क्योंकि अब शिक्षक हर रोज किताब में दो-चार नए शब्दों से बात करेंगे और शब्द से अर्थ निकालना और एक शब्द से दूसरा शब्द बनाना उन बच्चों के लिए संभव है जो कि पहले वर्ण सीखकर आते हैं। तब शिक्षक के सामने सवाल आता है कि अब क्या किया जाए? पिछले 15-20 साल से मैं इस काम में जुड़ा हुआ हूं। 'लुक एण्ड से' पद्धति में शब्दानुक्रमिक ढंग से हमने किताब लिखी है। हमने कभी नहीं सोचा कि 200 दिन के लिए या पहले हफ्ते या पहले एक दिन का पाठ कैसे बनाया जाए ? एक दिन का पाठ 5-10 मिनट में खत्म हो जाता है क्योंकि वह शब्द आपने रटा दिया है। उसके बाद शिक्षक क्या करेगा ? फिर उस शब्द से नया शब्द बनाने की कोशिश करेंगे। उस शब्द से बच्चों के जीवन का कोई संबंध नहीं है, वह एक बनावटी शब्द हो जाएगा। आप कहानी या चित्र बनाने की बात करेंगे तो इससे साक्षरता तो नहीं आएगी, लिखना-पढ़ना तो नहीं आएगा। इससे बच्चे पीछे चले जाते हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षक यह देखते हैं कि पहले के तरीके में एक पेज पर जो दो-तीन चित्रों के साथ दो-तीन शब्द हैं वे उन्हें पढ़कर सुना देते हैं। बच्चे इन शब्दों को देखकर पहचानेंगे जैसे आप कहिए की आ से आम या अ से अनार या इ से इमली। ये शब्द बच्चे ने सीख लिए हैं। इसके बाद नया शब्द चाहिए। जैसे न से शुरू होने वाला एक नया शब्द बच्चे को सीखना चाहिए। न से नया शब्द सीखने के लिए बच्चे को

ध्वनि की समझ होनी चाहिए। इस पद्धति से शिक्षक को बहुत सुधार करवाना पड़ता है। इस तरह से सुधार करने के तरीके तो किताब में नहीं हैं, पाठ में नहीं हैं। जब किताब में आपने पाठ को इस तरह से नहीं बनाया है और आपने हर शिक्षक को कहा है कि रचनात्मक होकर सुधारते रहो। जो शिक्षक यह नहीं कर पाते उनके बच्चे पीछे रह जाते हैं। इसलिए शिक्षक के लिए यह आसान तरीका होता है कि वह प्रचलित वर्णमाला पद्धति से पढ़ाते रहें। वर्णमाला पद्धति से पढ़ाते रहने से जब एक महीने बाद सभी बच्चे सारे वर्ण सीख जाएंगे तो सभी बच्चे एक साथ आगे चलेंगे।

प्रश्न : लेकिन वर्णमाला पद्धति से सिखाने की एक समस्या, बच्चों के साथ मैंने देखी है कि, यदि हम उसको कमल लिखने के लिए बोलेंगे तो वह पूछेगा क कबूतर वाला। म मछली वाला। इस पद्धति में बच्चा एक शब्द के साथ एक वर्ण का संबंध जोड़ लेता है। ध्वनि की समझ और एक ही ध्वनि का विभिन्न शब्दों में प्रयोग वह नहीं समझ पाता।

उत्तर : इसका मतलब हुआ कि उसको ठीक से समझाया नहीं गया है। ऐसा नहीं है कि एक वर्ण के लिए आप एक ही शब्द का इस्तेमाल करें। उसके लिए एक वर्ण से शुरू होने वाला शब्द बोलो और बच्चे से कहो कि वह इसी वर्ण से शुरू होने वाला दूसरा शब्द बोले। जैसे क से कमल होता है और अब एक शब्द तुम कहो जो क से शुरू होता है। इस तरीके से यह समस्या नहीं रहेगी।

प्रश्न : मैं यह कह रहा था जैसे क से एक शब्द कबूतर सिखा दिया जैसा आमतौर पर किताबों में होता था....

उत्तर : कुछ निश्चित शब्द तो बच्चे प्रारंभिक वर्ण से सीख लेंगे। इसके बाद बच्चे जब पांच-सात-दस वर्ण सीख लेते हैं तो उसको और शब्द, नए शब्द देते रहना चाहिए। शब्द का उच्चारण करवाना, शब्द दिखाकर चित्र के साथ जोड़ना बच्चे को बताना चाहिए। इसलिए हर रोज 5-6 शब्द और 2-3 वर्ण बच्चे को सिखाते रहिए। एक महीने बाद वे 8-10 वर्ण सीख पाएंगे। दूसरे महीने में सारे वर्णों की पहचान हो जाएगी। तब आपने जो 30-40 शब्द लिए हैं उन्हें तोड़कर और जोड़कर वे सौ नए शब्द बना सकते हैं। यह प्रक्रिया एक-दो महीने बाद बहुत ही अच्छे तरीके से चलेगी। एक-दो महीने शिक्षक को लगातार बहुत प्रयास करना पड़ेगा। यह सोचना पड़ेगा कि बच्चों को क्या-क्या नए शब्द सिखाएं। यदि बच्चों को वर्णमाला चार्ट दें तब भी वे 50 शब्द सीख लेंगे क्योंकि उसके पास 50 वर्ण हैं। इसके साथ शिक्षक यह भी कर सकते हैं कि एक चार्ट बनाएं कि पहले महीने में जिन वर्णों के साथ जो शब्द सिखाए थे, उनको बदल दें और उनके स्थान पर नए शब्द लें। कुछ कार्ड बनाकर पॉकेट बना दें जिसमें कि नए-नए शब्द हों। इसका मतलब यह भी नहीं है कि शब्दों को पढ़ाना बंद कर दिया जाए। बच्चों के साथ पुराने शब्दों पर भी चर्चा करते रहना चाहिए। कहानी में, कविता में शब्द होते हैं। इसके बाद कोई लोकप्रिय गीत लें। गीत में शब्दों को याद करना आसान होता है। उसमें आए नए शब्दों के लिए कार्ड बना लें। एक बार गीत याद हो जाने के बाद बच्चा पढ़ते या सुनते हुए उस क्रम में आने वाले शब्दों को भी देख सकता है। इससे शब्दों को याद करना आसान हो जाता है। इस तरीके से लोग एक बनी हुई संरचना को भंग करते हैं और नई संरचना भी बनाते हैं। यह शब्द के साथ भी करते हैं और वर्ण के साथ भी करते हैं।

वर्ण सीखना तब और भी आसान हो जाता है जब बच्चे स्वर सीख लेते हैं। व्यंजन से शुरू करना थोड़ा मुश्किल होता है क्योंकि अकेले व्यंजन से बनने वाले शब्द बहुत कम होते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में कम से कम दो महीने लग जाते हैं। इस प्रक्रिया में शब्द सिखाएं, वर्ण सिखाएं, गीत सिखाएं, चित्र देखकर सही पहचान करें, शब्द देखकर उच्चारण करें और इसके साथ वर्ण भी लिखें। लिखने का विज्ञान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसलिए पहले दिन से लिखना शुरू करें। लिखने से बच्चे को यह समझ में आता है कि हम जो आवाज निकालते हैं उसकी भी एक तस्वीर होती है। उस तस्वीर को बनाने का भी एक तरीका होता है। यदि उस तस्वीर को सही तरीके से बनाना सीख लें तो लिखना आसान होता है। यह पहले दिन से ही सिखाना चाहिए। इसलिए पहले दिन भाषा के कालांश में 10-10-15-15 मिनिट की पांच-छः गतिविधियां करनी चाहिएं और आखिर में जाकर इन सब चीजों को जोड़ देना चाहिए। वर्ण, शब्द, तस्वीर और गीतों को साथ जोड़ना चाहिए और कोशिश यह करनी चाहिए कि एक ही शब्द ज्यादातर गतिविधियों में आए। सिर्फ किसी एक ही चीज को रखने की जरूरत नहीं है। आप शब्द रखिए, वाक्य भी रखिए, कविता भी रखिए लेकिन बच्चे को वर्ण भी तो सिखाना है। वर्ण के लिए गीत करा सकते हैं। शब्द द्वारा उच्चारण भी सिखाएंगे, पढ़ना भी सिखाएं, सुनना सिखाएं और लिखना भी सिखाएं। ये चार-पांच चीजें यदि एक साथ करेंगे तो अर्थ नहीं समझने की समस्या नहीं रहेगी।

प्रश्न : लेकिन वर्ण पद्धति का विरोध करने वाले लोगों का मानना है कि यदि आप वर्ण से आरंभ करते हैं तो आपने शुरूआत ही भाषा की निरर्थक इकाई से कर दी। क्योंकि वर्ण का अपने आप में कोई अर्थ ही नहीं होता। साथ ही इस पद्धति में बच्चे लम्बे समय तक इन वर्णों को रटते रहते हैं। उन्हें इस प्रक्रिया से ऊब हो जाती है। दूसरी तरफ शब्द पद्धति की समझ अभी शिक्षकों में समुचित रूप से नहीं दिखाई देती इसलिए वे इस पद्धति का समुचित उपयोग भी नहीं कर पाते हैं।

उत्तर : यह सही है कि शब्द पद्धति का प्रयोग शिक्षक ठीक से नहीं कर पाते। हम भी अलग से वर्ण सिखाने की बात नहीं करते। हम

वर्ण सिखाने की प्रक्रिया को शब्द से, गीत से और चित्र दिखाकर कर रहे हैं। कहानी कह रहे हैं, लिखा हुआ शब्द दिखा रहे हैं। वर्ण से शब्द को जोड़ा जाता है जैसे अ से अजगर, आ से आम। आम पर आप चर्चा कर रहे हैं कि आम कहां होता है ? आम कब होता है ? इस तरह की चर्चा से काम आगे बढ़ता है। इसलिए इस प्रक्रिया में अर्थ समझने की समस्या नहीं होती। अर्थ का संबंध भावना के साथ बच्चे तक पहुंचता है। इसके साथ-साथ वर्ण प्रतीकों का ज्ञान बहुत जरूरी है। कुछ राज्यों की मुख्य भाषाओं में वर्णों को गीत, कहानी और चित्रों के द्वारा पढ़ाया जाता है। बच्चा गीत, कहानी और चित्रों के द्वारा अर्थ को समझता है। सिर्फ वर्णों को अकेले प्रतीक के तौर पर ही नहीं सीखते बल्कि चित्र और कहानी के माध्यम से उनका संबंध बनाया जाता है। इसलिए यह कहना कि हमारी पुरानी वर्णमाला पद्धति बहुत बुरे ढंग की है, यह ठीक नहीं है। यह बहुत ही समृद्ध ढंग की है। जो इसे अस्वीकार करते हैं वे इसके महत्त्व को नहीं समझते। अभी वर्णमाला पद्धति को पुनर्जीवित करने का मामला उसी तरह का नहीं है जैसा कि पहले था। पूरे शब्द का उच्चारण करने का नाम लोगोग्राफिक रीडिंग होता है। यदि बच्चा लोगोग्राफिक रीडिंग कर लेता है तो जिस शब्द का इस्तेमाल गीत में हो रहा है और वह वर्णमाला चार्ट में भी है तो वह उसे लिख सकता है। जब उसे गीत याद हो जाएगा तो वह पूरा शब्द लिखकर उच्चारण भी कर सकता है जबकि वह वर्णों का उच्चारण अभी तक अलग-अलग नहीं कर सकता। इस काम में यह कोशिश होती है कि जिन सभी शब्दों, सभी वाक्यों को उसने याद कर लिया उनकी अलग-अलग ध्वनि का उच्चारण कैसे करे? इसलिए ध्वनि विश्लेषण करना होता है। हिन्दी पॉकेट बोर्ड में अलग-अलग वर्णों को आगे-पीछे लेते हैं जैसे कि नल, फल, छल आदि। बच्चों को अलग-अलग वर्णों से मिलाकर शब्द बनाने में बहुत मजा आता है क्योंकि इस प्रक्रिया में बच्चे सृजन कर रहे होते हैं। इस पद्धति से वर्ण, शब्द, गीत और वाक्य सब एक दिन में हो सकते हैं। इसलिए शिक्षक 15 मिनिट में इन सभी को एक साथ जोड़ दे। जैसे कि एक शब्द में आने वाले वर्णों को वर्णमाला चार्ट में दिखा दे और कुछ वर्ण गीत के माध्यम से याद करा दे। इस तरह समेकित तरीक से काम करने पर एक महीने में बच्चे को सारे वर्ण याद हो जाएंगे। वर्ण सीख लेने पर यदि उनसे नए-नए शब्द पढ़वाएंगे तो बच्चा सीख जाएगा। जो लोग 'लुक एण्ड से मेथड' में शब्दक्रमिक ढंग से काम करते हैं उन्होंने लिखा है कि तीन महीने तक लगातार पढ़ाने के लिए एक शिक्षक को हर रोज क्या योजना बनानी है, उसके लिए क्या गतिविधि होगी, उसमें कितना समय लगेगा, बच्चे के लिए क्या समस्या होगी, शिक्षक को क्या दिक्कत हो सकती है ? सवाल करने के लिए क्या प्रयत्न करना है ? वे खुद पढ़ाकर दिखाते हैं कि इस पद्धति और सामग्री से पढ़ाने में क्या समस्या होती है ? इस तरह हर रोज मिश्रित पद्धति से काम किए जाने से बच्चे जल्दी सीखेंगे। इसके बाद प्राइमर पर होने वाले काम को बहुत जल्दी से सीख लेंगे। इस पद्धति से हम पश्चिम बंगाल, मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश में काम कर रहे हैं। यदि इस तरह से काम करेंगे तो बच्चों को हम काम में व्यस्त रख सकेंगे और अर्थ समझने में भी सक्षम बना पाएंगे।

प्रश्न : इससे जुड़ी हुई बात यह है कि स्कूल पूर्व की उम्र के, पांच छः साल तक, बच्चों में मौखिक भाषा की क्षमता बहुत समृद्ध होती है। वे बोलचाल में बहुत जटिल वाक्य संरचना का इस्तेमाल करते हैं और सुनकर भी समझते हैं। लेकिन जब वे स्कूल आते हैं और लिखित भाषा पर काम करते हैं तो ऐसा लगता है कि जैसे उनकी मौखिक भाषा का लिखित भाषा से संबंध कट गया है। ऐसा क्यों होता है और इसको जोड़ने के लिए क्या किए जाने की जरूरत है?

उत्तर : एक तो यह कि, स्कूल को हम एक अलग संगठन, एक ऐसे औपचारिक ढांचे के तौर देखते हैं जो कि समाज की पहुंच से दूर है। बच्चे के पैदा होने के बाद से ही हम घर में होने वाले भाषा के विकास, समझ के विकास और आचरण के विकास के लिए क्या करना चाहिए, यह सवाल क्यों नहीं उठाते ? यह कहा जाता है कि बच्चे के पांच-छः साल के होने तक और स्कूल जाने तक बहुत देर हो चुकी होती है। तब तक बच्चे को जो बनना था वह बन चुका होता है और जो बिगड़ना था वह बिगड़ चुका होता है। इस उम्र तक बच्चे का एक तरह का विकास हो चुका होता है। शिशु विकास के अध्ययन बता रहे हैं कि स्कूल पहुंचने की उम्र तक बात हाथ से निकल चुकी होती है। अभी प्राथमिक शिक्षा पर जो लोग बहुत जोर देकर बात कर रहे हैं वे भूल जाते हैं कि आम जनता के लिए प्राथमिक शिक्षा जहां से शुरू होती है, वास्तव में वह उससे तीन साल पहले शुरू होनी चाहिए। हमारे यहां प्राथमिक और पूर्व प्राथमिक शिक्षा में कोई संबंध नहीं है। कोई संस्था इस विचार पर काम नहीं कर रही है। इसीलिए हम हर स्कूल में जाकर कहते हैं कि पूर्व प्राथमिक शिक्षा का प्रबंध तो स्कूल से ही करना है। इसके साथ समुदाय को जोड़ना है, माता-पिता को स्कूल से जोड़ना है। जो बच्चे आस-पास के हैं उनके माता-पिता से बात की जाए। उनका बच्चों के लालन-पालन संबंधी प्रशिक्षण किया जाए। उनको कहानी कहने और गीत कहने का प्रशिक्षण दिया जाए। उनको रंग कार्डों के बारे में संवेदनशील बानाया जाए। उनके परिवेश में जो चीजें हैं उन्हें लेकर बात करना सिखाया जाए। बच्चों के लालन-पालन से संबंधित पाठ्यक्रम बनाया जाए। अनुभवी शिक्षकों को इस पाठ्यक्रम का प्रशिक्षण दिया जाए। हर बच्चे के माता-पिता एक दिन स्कूल में आएं। शिक्षक भी अभिभावकों से मिलता रहे। वयस्क शिक्षा के साथ स्कूल के सीखने को जोड़ा जाए, सामाजिक सीखने के साथ स्कूल को जोड़ा जाए। इस काम को एक साथ करने की जरूरत है। लेकिन अलग-अलग

राज्यों में इसके लिए अलग-अलग मंत्रालय और विभाग बना दिए हैं-स्कूल पूर्व शिक्षा, पौढ़ साक्षरता, अनौपचारिक शिक्षा अलग हो गई हैं और प्राथमिक शिक्षा अलग हो गई है। इनको प्राथमिक शिक्षा के साथ जोड़ने की जरूरत है। पंचायत में यदि इन सबको एक साथ इकट्ठा करें तो यह संभव हो सकता है। इसलिए सिर्फ भाषा सुधार की बात और स्कूल सुधार की बात नहीं करके व्यवस्था सुधार की बात करनी होगी।

प्रश्न : बच्चे की बुनियादी अवधारणाएं जितनी ज्यादा समृद्ध होंगी बच्चे की भाषा भी उतनी ही समृद्ध होगी। बच्चे की भाषा सीखने की प्रक्रिया में जन्म के बाद से बनने वाली इन बुनियादी अवधारणाओं की भूमिका को आप भाषा विकास में कैसे देखते हैं ?

उत्तर : इसमें तीन-चार चीजें हैं। एक तो हम बच्चे के संपूर्ण विकास को सिर्फ भाषा के माध्यम से नहीं कर सकते। भाषा के विकास से बच्चे के विकास का सिर्फ अंदाजा मिलता है। बच्चे का बहुत सा विकास परिस्थितिजन्य होता है, और यह हर बच्चे का स्वयं अपने साथ भी होता है। यदि अवधारणाओं के निर्माण की बात करें तो स्कूल में अवधारणा के निर्माण के लिए जिस मानक भाषा का उपयोग होता है वह बच्चे के जन्म के बाद परिवार या घर में उपयोग होने वाली भाषा से बहुत भिन्न होती है। घर के वातावरण या वास्तविक जीवन की स्थितियों में अवधारणा का मतलब होता है कि बच्चा कुर्सी से उठना चाहता है, यदि वह एक साथ उठेगा तो गिर जाएगा और चोट लगेगी। इसलिए वह एक तकनीक निकालता है कि वह धीरे-धीरे कुर्सी को पकड़कर चलता है। ये सब पक्ष भी विकास के ही हैं। बच्चे ने कर-करके देखा, इसलिए वह ऐसा करता है जबकि उसकी भाषा का अभी विकास नहीं हुआ है। वह क्रिया और परिस्थितियों में अनुभव के माध्यम से सीखता है। जब घर में बातचीत होती है तब वह सीखता है कि इसे चलना कहते हैं, इसे उठना कहते हैं और इसे पकड़ना कहते हैं। जो भाषा घर में इस्तेमाल की जाती है वह विशेष होती है। अलग-अलग परिवार में अलग-अलग मातृ भाषा होती है। और जब आस-पास के बच्चे मिलते-जुलते हैं तब एक समुदाय की भाषा को अपनाते हैं। जब बच्चे स्कूल में जाते हैं तो शिक्षक बच्चों के साथ बातचीत करने या गणित पढ़ाने के लिए जिस भाषा को काम में लेते हैं वह भी स्थानीय बोलचाल की भाषा ही होती है। शिक्षक थोड़ा-सा अलग हटकर नए-नए शब्द उपयोग करते हैं। शिक्षक की भाषा मिश्रित होती है। इसमें स्थानीय भाषा, मानक भाषा और स्वयं के अनुभव होते हैं। लेकिन जो मानक भाषा पुस्तकों में होती है और जिस तरह इस्तेमाल की जाती है वह बहुत भिन्न होती है। न तो शिक्षक और न ही बच्चे उसका इस्तेमाल करते हैं। और न ही उसका इस्तेमाल स्थानीय समुदाय करता है। यह इतनी भिन्न भाषा होती है कि इसका किसी समुदाय द्वारा इस्तेमाल नहीं किया जाता। जब कोई औपचारिक व्याख्यान देता है तब इस तरह की भाषा का इस्तेमाल करता है। इसलिए अनौपचारिक भाषा से पाठ्यपुस्तकों की औपचारिक भाषा में संक्रमण बहुत भिन्न होता है। स्कूल में अवधारणा का विकास जिस मानक भाषा में होता है वह स्थानीय भाषा से भिन्न होती है। इसलिए स्कूल में अवधारणाओं के विकास कार्य अमानक भाषा से मानक भाषा में करने को प्रोत्साहित करना चाहिए। अमानक भाषा के माध्यम से मानक भाषा पर आना हमें गतिविधि के द्वारा करना चाहिए। जो बच्चे अनुभव लेकर नहीं आते उनके साथ चित्रों के माध्यम से इस पर काम करना चाहिए। यह केवल अनुभव से सीखना ही नहीं है बल्कि यह अवधारणाओं के बनने के लिए भी जरूरी है। सीखने में सबसे बेहतर तो यही है कि शिक्षक जिन चीजों के बारे में बता रहा है बच्चा वास्तविक जिन्दगी में उन अनुभवों से गुजरे। लेकिन यदि यह संभव नहीं है तो दूसरा बेहतर तरीका है कि वह मॉडल या चित्र आदि के माध्यम से उन अनुभवों को देने की कोशिश करे। हमारे जैसे विकासशील देशों में अवधारणा विकास इन तरीकों से बहुत ही मुश्किल है। इसलिए हमने रटाने का तरीका अपना लिया क्योंकि उसका कोई विकल्प हम नहीं दे रहे हैं। किताब लिखते हैं तो उसका विकल्प क्या है ? विकल्प होगा कि मानक भाषा से पहले स्थानीय संप्रेषण की भाषा को भी एक महत्त्वपूर्ण दर्जा दिया जाए। वास्तविक चीजों के लिए बच्चों के पास अपनी मातृभाषा में जो अवधारणात्मक शब्द हैं उनको पाठ्यसामग्री बनाने में इस्तेमाल किया जाए। लेकिन बच्चों के लिए पाठ्यसामग्री के निर्माण में ऐसा नहीं किया जाता क्योंकि इससे भाषा का मानकीकरण नहीं होगा और आप उसको पूरे राज्य में लागू नहीं कर पाएंगे। यह स्थानीय स्तर बनाम व्यापक स्तर पर शिक्षाक्रम निर्माण का संघर्ष है। इस संघर्ष का अभी तक हम कोई जवाब नहीं दे पाए हैं। चाहे आप कितने ही शिक्षाक्रम लिखिए उनका कोई फायदा नहीं होगा जब तक स्थानीय स्तर पर अनुभव से सीखने को भाषा के स्थानीय पर्यावरण से नहीं जोड़ेंगे।

प्रश्न : एक बच्चा जो सुनकर या लिखित भाषा में अर्थ नहीं ग्रहण करता उसकी वजह, मुझे लगता है कि, उसकी उन आधारभूत अवधारणाओं का नहीं बनना है जो कि अर्थ समझने में मदद करती हैं। उदाहरण के लिए, बच्चा मुलायम का अर्थ नहीं समझ सकता जब तक की इसकी कोई अवधारणा उसके पास पहले से नहीं हो। यदि उसने मुलायम को अनुभव में महसूस नहीं किया है तो चाहे शब्द का कितना ही इस्तेमाल किया जाए उसके मन में इसका कोई अर्थ नहीं बनेगा। इस समस्या का कारण शायद पूर्व प्राथमिक शिक्षा की भूमिका को ठीक से रेखांकित नहीं करना है। मुझे लगता है कि स्कूल पूर्व में इस पर ठीक से काम किए जाने की जरूरत है।

उत्तर : पूर्व प्राथमिक शिक्षा को बाहर के लोग तो नहीं कर पाएंगे क्योंकि आप औपचारिक रूप से पूर्व प्राथमिक शिक्षा केन्द्र तो उतने नहीं खोल पाएंगे। इसलिए इसके लिए स्थानीय समुदाय को ही तैयार करना है। स्थानीय स्तर के संसाधनों को ही हमें विकसित करना होगा। इसके लिए उन मां-बहिनों को जो कि थोड़ी बहुत पढ़ी-लिखी या साक्षर हैं, तैयार करना होगा। और समस्या भी यही है कि हमारे यहां समुदाय आधारित सीखने की व्यवस्था की अभिवृत्ति ही नहीं है और इसके लिए कोई संकल्पित भी नहीं है। हम तो सभी चीजों पर एक अलग-थलग तरीके से अपना काम करने के अभ्यस्त हैं।

प्रश्न : आप कहते हैं कि बच्चे के लिए भाषा सीखने के दो आयाम हैं। एक, 'पढ़ने के लिए सीखना' और दूसरा है 'सीखने के लिए पढ़ना'। इस विभाजन में ऐसा लगता है कि ये दोनों क्रियाएं एक दूसरे से स्वतंत्र हैं। हम अपने अनुभव से देखें तो यह लगता है कि शुरू में बच्चे का ज्यादा ध्यान वर्ण को पहचानने और शब्द के उच्चारण पर ही होता है। उस समय बच्चे का ध्यान अर्थ पर ज्यादा नहीं होता। लेकिन इस विभाजन में हल्का-सा डर यह होता है कि पहली क्रिया को यांत्रिक क्रिया मान लिया जाए और दूसरी में अर्थ की बात करेंगे। पढ़ने के लिए सीखना और सीखने के लिए पढ़ना के संबंध को कैसे समझा जाए ?

उत्तर : पढ़ने के लिए जो सीखना होता है उसमें सिर्फ ध्वनि और नाम को जोड़कर देखने का ही काम नहीं होता। उसके 10-15 चरण हैं। किसी भी पद्धति में आप बच्चे को साक्षर बनाएंगे-तो आप अंततः कोई नए शब्द का उच्चारण करवाएंगे। आप कोई लम्बा-चौड़ा वाक्य तो नहीं देंगे। इस स्थिति में बच्चा पहले उसे मन में तोड़ने की कोशिश करता है। वयस्क भी शब्द को मन में तोड़ते हैं जब उन्हें लगता है कि यह शब्द तो पहले नहीं देखा। बच्चे इस तोड़ने के तरीके में उच्चारण करते हैं। बच्चे को हम एक-दो महीने की छूट दे देते हैं कि वे उच्चारण करके शब्द पठन से वर्ण पठन की ओर जा सकें। इस प्रक्रिया में पूरे शब्द की तस्वीर को देखना, वर्णों को तस्वीर की तरह पढ़ना, उस वर्ण को शब्द में देखकर पढ़ना और इससे वर्ण पठन पर आना। शब्द पठन और वर्ण पद्धति और अर्थ को मिलाइए वह होता है अर्थोग्राफी। अर्थोग्राफी का मतलब होता है जब प्रवाह के साथ पढ़ पाएंगे तब अर्थ समझ में आएगा। क्योंकि कार्यात्मक स्मृति (वर्किंग मेमोरी) में एक शब्द से पूरे वाक्य का अर्थ तो नहीं बनता है। बच्चा दस शब्दों के वाक्य में एक-दो शब्दों को पढ़ने के बाद पहले वाले शब्दों को भूल जाता है। इसलिए जब वह दसवें या ग्यारहवें शब्द पर पहुंचता है तो वह अर्थ निकाल ही नहीं पाता है।

स्मृति के तीन हिस्से होते हैं। पहली, त्वरित स्मृति (इंस्टेंटिनियस मेमोरी) जो दो-तीन सैकिण्ड की होती है और जिसमें हम सिर्फ बाहर से मिल रहे संप्रेषणों पर प्रतिक्रिया करते हैं। दूसरी, कार्यात्मक स्मृति जो दस से बीस सैकिण्ड की होती है। इस कार्यात्मक स्मृति में जब बीस सैकिण्ड तक पूरे शब्द याद रहें तब उसे मिलाकर आप अर्थ निकाल सकते हैं। कार्यात्मक स्मृति का समय जितना ज्यादा होगा वाक्य का अर्थ निकालने की संभावना बढ़ जाएगी। इसलिए पहले हमें कार्यात्मक स्मृति को विकसित करने के लिए कोशिश करनी होती है। वही शब्द ज्यादा दिया जाए जो पहले देखा गया है और जिसका उच्चारण करवाया गया है और जिसका अर्थ बच्चे को मालूम है। यदि तीस शब्द हमने एक महीने में सिखा दिए हैं तो अगले महीने में हम तैंतीस शब्द देंगे। यदि बच्चे को तीस शब्दों का अर्थ पता है तो वह तीन शब्दों का अर्थ संदर्भ से निकाल लेगा। यह जो तरीका है इसमें हम कार्यात्मक स्मृति से सहायता ले रहे हैं। इसमें बच्चे पर दबाव कम हो रहा है। इसमें नए शब्द भी कम हैं। तीसरे स्तर पर दीर्घ कालिक स्मृति (लौंग टर्म मेमोरी) होती है जिसमें किसी चीज की पुनरावृत्ति से वह हमारी समझ का हिस्सा बन जाती है।

पढ़ने के भी तीन स्तर हैं। पहले स्तर पर सिर्फ दो-तीन शब्दों का पढ़ना होता है और इससे बच्चा अर्थ नहीं निकाल पाता। दूसरे स्तर पर व्यक्ति को अर्थ समझने के लिए किसी की मदद की आवश्यकता होती है। बिना मदद के वह अर्थ नहीं समझ सकता। तीसरे स्तर और उच्च स्तर पर बच्चा स्वयं पढ़कर अर्थ समझने में सक्षम होता है। जब बच्चा सभी शब्दों को पहचानता है और अर्थ समझता है तब उसे वाक्य और क्रम के तर्क समझा सकते हैं या उसपर चर्चा कर सकते हैं। पढ़ने के लिए सीखना में पहले शब्द पठन और वर्ण पद्धति को जोड़ते हैं। पहले इन दोनों को अलग से सीखना और फिर दोनों को एक साथ मिलाना होता है। फिर वर्ण पठन पर जाना होता है। फिर नई शब्दावली लानी होती है और उसे अलग-अलग संदर्भों में इस्तेमाल करना होता है। बहुत ध्यान रखते हुए हमें शब्दावली को नियंत्रित रखना पड़ता है। जो शब्द बार-बार आते हैं उन पर काम करना होता है। नए-नए शब्द चुनकर देते हैं और अर्थ समझने में चित्र की मदद लेते हैं। यह सभी पढ़ने के लिए सीखने के हिस्से हैं। इसके बाद ऐसे वाक्य देते हैं जिनमें दस-बारह शब्द हों। इस प्रक्रिया में बच्चा हर शब्द को अलग-अलग उच्चारण करके अर्थ निकलता है। फिर वह वाक्य को दो-तीन हिस्सों में बांटकर उसके अर्थ को समझता है। इसके बाद वह इन हिस्सों को मिलाकर, उतार-चढ़ाव के साथ, सही विराम और बल देकर अर्थ को समझता है। यह भी पढ़ने के लिए सीखना के हिस्से हैं। पढ़ने के लिए सीखने के लिए इस तरह के करीब पन्द्रह स्तर हैं। यह सब करने के बाद बच्चा प्रवाह के साथ पढ़ सकता है। प्रवाह का मतलब है कि वह अर्थ समझते हुए पढ़ सकता है। बिना अर्थ समझे शब्दों को मिलाना

अर्थ को समझना नहीं हो सकता। इस तरह से पढ़ने में गति ज्यादा हो सकती है, जल्दी-जल्दी पढ़ना हो सकता है लेकिन अर्थ समझते हुए पढ़ना नहीं होगा। प्रवाह के साथ पढ़ने में अर्थ का समझना भी निहित है। इस तरह के सभी काम पढ़ने के लिए सीखना के तहत होते हैं।

इसके बाद आता है समझते हुए पढ़ना मतलब अर्थ समझते हुए सीखने के लिए पढ़ना। इसका मतलब है कि हर वाक्य में हर शब्द किसी न किसी सवाल का जवाब है। जैसे कि एक वाक्य लेते हैं-'आज मैं जयपुर से दिल्ली आया हूं।' आप कहां से आए हैं ? जयपुर से आए हैं। कहां आए हैं ? दिल्ली आए हैं। कौन आए हैं ? मैं आया हूं। कब आए हैं ? इसे वाक्य में प्रश्न उत्तरों के संबंध को खोजना कहते हैं। यह विश्लेषण का या आलोचनात्मक पठन का तरीका है। फिर इस पर अगले स्तर के सवाल हो सकते हैं कि, 'क्या आप जयपुर में रहते हुए यह बात कह सकते हैं कि 'मैं आज जयपुर से दिल्ली आया हूं।' यदि यही वाक्य आप दिल्ली में बैठकर कह रहे हैं तो यह तार्किक होगा लेकिन जयपुर में बैठकर कहने पर यह तार्किक नहीं होगा। इस तरह अलग स्तर पर चर्चा करके यह काम किया जा सकता है। इससे इस नतीजे पर पहुंचा जा सकता है कि आप क्या वाक्य इस्तेमाल करते हैं यह भौतिक स्थिति पर निर्भर करता है। यदि आप यहां कोई शब्द बदल दोगे तो अर्थ कैसे निकलेगा ? आप 'आया' की जगह 'गया' कहेंगे तो 'हूं' नहीं कह सकते। यदि 'गया' कहना है तो 'था' कहना होगा और फिर 'आज' शब्द नहीं आएगा। इस तरह अर्थ के साथ काल और व्याकरण सब जुड़ जाते हैं। यह पहला स्तर है। दूसरे स्तर पर यदि किसी वाक्य में कोई शब्द बदलना चाहें तो उसके स्थान पर कौनसा शब्द रख सकते हैं। जैसे 'आज मैं जयपुर से दिल्ली आया हूं।' यदि इस वाक्य में से 'आज' को हटा दें तो इसकी जगह पर कौनसा शब्द आएगा ? 'कल' आ सकता है। इसका मतलब हुआ कि यह समय से संबंधित शब्द है। इसकी जगह मंगलवार या दशहरा आ सकता है। यह समय से संबंधित शब्द है। 'मैं आज जयपुर से आया हूं।' इस वाक्य में से 'मैं' शब्द को कैसे बदल सकते हैं ? इसका मतलब है कि इसे नहीं बदला जा सकता है। यह करने में बच्चों को बहुत मजा आता है। जब हम शब्दों से खेलते हैं तो बहुत ही मजेदार सीखने का काम चलता है। यह भी पढ़ने के लिए सीखने का ही हिस्सा है। फिर पद आएगा। 'मैं आज जयपुर से दिल्ली आया हूं।' में 'आया' की जगह क्रिया पद ही आएगा। किसी भी शब्द को अर्थपूर्ण ढंग से नहीं बदला जा सकता जब तक कि उसी वर्ग का शब्द वहां नहीं आए। यह भाषा और संप्रेषण के कौशल और समझकर पढ़ने का बहुत ही माना हुआ स्वतःस्फूर्त और भावनात्मक तरीका है जो कि व्याकरण, व्याकरण के नियम और अवधारणाओं को समाहित किए हुए रहता है। यह आलोचनात्मक पठन का तरीका है। जैसे कि, क्रिया पद की जगह क्रिया पद आएगा और सर्वनाम की जगह सर्वनाम ही आएगा।

यदि अब आपके शुरूआती सवाल पर आएं तो यह कि पढ़ने के लिए सीखना और सीखने के लिए पढ़ना में कोई विरोधाभास या समस्या नहीं है। ये दोनों अलग-अलग नहीं हैं। पढ़ने में समझना शामिल है।

प्रश्न : जब बच्चों के लिए किसी भी तरह की पाठ्यसामग्री बनाने की बात की जाती है तो यह कहा जाता है कि सरल शब्द हों, सरल और छोटे वाक्य हों, आरंभ में शब्दों की संख्या, वाक्यों की संख्या सीमित हो। जबकि हम देखते हैं कि बच्चे मौखिक भाषा में बहुत ही जटिल वाक्य संरचना को समझ रहे होते हैं। बच्चों के लिए पाठ्यसामग्री बनाते हुए किस तरह की बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए और इसके पीछे तर्क क्या हैं ?

उत्तर : मैं इस बात से सहमत हूं कि बच्चे मौखिक बातचीत में काफी जटिल विचार या वाक्य संरचना और अमूर्त वाक्य संरचना को समझ पाते हैं। लेकिन यह सारी चर्चा अनौपचारिक भाषा में हो रही है। इसमें हम बुद्धि का खेल भी कर सकते हैं और प्रश्नोत्तरी कर सकते हैं। लेकिन जब हम लिखित सामग्री पर काम करते हैं तब अर्थ की गहनता और वास्तविक दुनिया की जटिलता पर विचार की ओर जाते हैं तो इसमें बच्चे के लिए एक साथ दो तरह की कठिनाई देने से बचना चाहिए। एक तरह की कठिनाई है कि नए-नए शब्द दे दीजिए, लम्बे चौड़े वाक्य बनाइए, अमूर्तीकरण पर जोर दे दीजिए और अमूर्तीकरण में बात करिए। इसमें बच्चे दो तरह की समस्याओं से जूझ रहे होते हैं। इसलिए हम पहले शिक्षण द्वारा, कहानी के द्वारा, चित्र के द्वारा, चरित्र चित्रण के द्वारा, घटना के वर्णन के द्वारा एक भाषा का वातारवण बनाते हैं। जिसमें बच्चे को भाषा बहुत सरल-सरस लगे। इसमें भी चिन्तन की जगह है। इसमें विश्लेषण की जगह है। सरल शब्दों के वाक्य और अनुच्छेद से जटिल संसार का विश्लेषण कैसे करते हैं, इसका तरीका सीखना होता है। इसका तरीका होता है कि किस ढंग से आप सवाल पूछेंगे। चिन्तन की ओर उन्मुख करने के लिए या रचनात्मक ढंग से विचार करने के लिए सवाल पूछते हैं कि तुम इस स्थिति में होते तो क्या करते ? इन सब सवालों पर चर्चा कर सकते हैं। जिसको कहते हैं सरल पठन सामग्री लेकिन अधिकतम संप्रेषणीयता। इसका मतलब नहीं है कि हम पठन सामग्री को जटिल बनाएं। करते-करते यह स्थिति आ जाए कि सरल पठन सामग्री से हम वास्तविक दुनिया की जटिलता की खोज करेंगे। यह धीरे-धीरे प्राप्त होने वाली स्थिति है। इसके बाद पठन सामग्री को भी धीरे-धीरे जटिल किया जा सकता है तब बच्चे के लिए समझना आसान हो जाएगा। क्योंकि यहां पर बच्चा सरल पठन सामग्री से दुनिया की जटिलता को समझने की अवधारणा बना चुका है। ◆

.... जारी